दुर्गति की राह पर शिक्षा

रोहित धनकर

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र की सेवाओं के खस्ताहाल की जिम्मेदारी और जवाबदेही किसकी है? क्या इनके बेहतरी का विकल्प निजी साझेदारी ही हो सकता है? क्या 'निजी' को 'गुणवत्ता' का पर्याय माना जा सकता है? क्या शिक्षा का निजीकरण लोकतंत्र के फलने-फूलने के लिए उचित होगा?

यह लेख राजस्थान सरकार के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में निजी साझेदारी के नाम पर लाए गए नीति प्रारूप के बहाने उपरोक्त सवालों को संबोधित करता है। साथ ही शिक्षा में बेहतरी के लिए समान स्कूल प्रणाली की जरूरत को रेखांकित करता है।

राजस्थान सरकार ने शिक्षा में सार्वजनिक-निजी साझेदारी नीति का प्रारूप जारी कर उस पर 31 मई, 2015 तक सुझाव मांगे थे। इस दस्तावेज पर कई सवाल उठते हैं। ये सवाल केवल राजस्थान की नीति पर ही नहीं हैं बल्कि सार्वजनिक-निजी साझेदारी की सभी नीतियों पर लागू होते हैं।

सरकार की जिम्मेदारी

मेरे विचार में सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल सरकार की जिम्मेदारी का है। एक लोकतांत्रिक और लोक-कल्याणकारी राज्य में सरकार की जिम्मेदारियां क्या हैं? क्या शिक्षा उन जिम्मेदारियों का हिस्सा है? क्या सरकार जिस भी जिम्मेदारी को निभाने में असफल हो, उसे निजी हाथों में सौंप सकती है? क्या सरकार को अपनी असफलता के लिए कुछ दंड मिलना चाहिए?

सुझावों के लिए प्रसारित नीति के मसौदे की पहली ही पंक्ति में सरकार ने साफ-साफ स्वीकार किया है कि वह अच्छी शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकती। राजस्थान सरकार ने शिक्षा के संदर्भ में पहली बार यह स्वीकारोक्ति शिक्षाकर्मी परियोजना को आरम्भ करते समय की थी। तब यह कहा गया था कि सरकार दूर-दराज के गांवों में प्रशिक्षित और योग्य शिक्षक नहीं भेज सकती। यदि उनका वहां पदस्थापन करती भी है तो विद्यालय में उनकी उपस्थिति सुनिश्चित नहीं कर सकती। बहुत से लोगों ने उस वक्त सवाल उठाए

थे कि क्या आमजन को सरकार की स्वीकारोक्ति सुनकर उसे अपनी जिम्मेदारी से मुक्त कर देना चाहिए? लेकिन तब राजस्थान के प्रबुद्धजनों और खासकर स्वयंसेवी संस्थाओं ने इस सवाल को दरकिनार कर दिया था। तब से लेकर आज तक यह बीमारी बहुत फैल चुकी है। सरकार अब केवल दूर-दराज के इलाकों में ही नहीं बल्कि आवागमन के साधनों से संपन्न इलाकों में भी शिक्षक की उपस्थिति सुनिश्चित नहीं कर सकी और अब तो वह मान ही चुकी है कि वह स्कूलों में अच्छी पढ़ाई भी नहीं करवा सकती।

वास्तव में, हमारी कानून और व्यवस्था की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। न्याय प्रणाली भी गरीब आदमी के लिए न्याय देने में लगभग असफल है। विधान सभा के संचालन की असफलता और वहां होने वाली बहस की गुणवत्ता तो शिक्षा से भी बुरी है। इस असफलता का तो विडियो दस्तावेजीकरण भी उपलब्ध है। तो क्या पुलिस, न्याय व्यवस्था और विधान निर्माण की व्यवस्था को भी निजी हाथों में दे देना चाहिए? शायद कोई भी इन व्यवस्थाओं के निजीकरण का पक्षधर नहीं होगा क्योंकि ये हमारे समाज के बुनियादी ढांचे को बनाए रखने वाली व्यवस्थाएं हैं।

अब सवाल यह उठता है कि क्या वर्तमान समय में और लोकतांत्रिक राज-व्यवस्था में शिक्षा कम बुनियादी है? शिक्षा, प्रबुद्ध नागरिक और लोकतंत्र का संबंध इतना गहरा, साफ और पारस्परिक निर्भरता का है कि खराब शिक्षा निश्चित रूप से खराब लोकतंत्र को बढ़ावा देगी। बल्कि प्रबुद्ध नागरिकों के अभाव में शायद लोकतंत्र संभव भी न रहे। इस संबंध को भारत के सभी शैक्षिक नीति संबंधी दस्तावेजों में भली-भांति उजागर किया गया है। यू.एन.डी.पी. की राजस्थान में मानव विकास पर 2002 की रिपोर्ट, जो उस वक्त के मुख्यमंत्री द्वारा समर्थित है, इस नतीजे पर पहुंचती है कि ''लोकतंत्र में शिक्षा का उद्देश्य नागरिकों का सबलीकरण होना चाहिए। उनकी विवेचनात्मक क्षमताओं, अभिरुचियों और साहस का इतना विकास होना चाहिए कि इनकी आवाज इतनी सशक्त और विवेकशील हो कि उसे दबाया न जा सके... इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करना एक लोकतांत्रिक सरकार का मूलभूत कर्तव्य होता है।''

इस प्रकार की शिक्षा निजी माध्यमों से संभव नहीं है। अतः सरकार इस निजीकरण की नीति के माध्यम से अपने मूल कर्तव्यों में से एक से पूरी तरह विमुख हो रही है। असफलता कर्तव्य विमुख होने का औचित्य साबित नहीं करती। यहां थोड़ा जिक्र एक और बात का भी होना चाहिए। अपनी असफलता की स्वयं ही घोषणा करके सरकार यह बता रही है कि इसे चलाने वाले निर्वाचित प्रतिनिधि और मोटी तनख्वाह लेकर शिक्षा व्यवस्था पर सवारी गांठने वाले प्रशासनिक अधिकारी या तो अक्षम हैं या भ्रष्ट हैं या जानबूझ कर शिक्षा को बर्बाद करने वाले हैं या फिर उनमें ये सभी गुण एक साथ मौजूद हैं। तो हम इस असफल बारात का बोझ क्यों ढो रहे हैं? अतः जो करना चाहिए वह निजीकरण नहीं बल्कि मंत्रियों और बाबुओं को बाहर का रास्ता दिखाना चाहिए। उन्हें उनकी असफलता के लिए उत्तरदायी बनाना है।

निजी शिक्षा के बेहतर होने का सवाल

इस नीति का औचित्य दो आधारों पर साबित करने की कोशिश की गई है। एक, सरकार की नाकामी, जिसकी बात हम ऊपर कर चुके हैं। दूसरी, निजी स्कूलों की कार्य-कुशलता का प्रमाण 'प्रति-विद्यार्थी कम खर्च के बावजूद सीखने में बेहतर परिणामों' के तौर पर दिया गया है। यह बात इतनी असंदिग्ध नहीं है जितनी यह नीति मानती है। निजी स्कूलों में जाने वाले विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और उन पर परिवार का दबाव इस गणना के हिस्से नहीं हैं। सरकारी स्कूलों को निजी बना देने से इन बच्चों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति नहीं बदल जाएगी। न ही उन पर परीक्षा में बेहतर परिणामों के लिए अचानक पारिवारिक दबाव बढ़ जाएगा। वैसे भी शिक्षा में 'परीक्षा परिणाम' के लिए पारिवारिक दबाव बहुत शुभ नहीं है।

साथ ही निजीकरण के इस सरकारी तर्क में शिक्षा की गुणवत्ता का बहुत ही संकुचित और अपर्याप्त मापदंड लिया गया है। क्या निजी स्कूल लोकतंत्र के लिए सबल और विवेकशील नागरिक भी बेहतर बनाते हैं? इसका न कोई अध्ययन है और न कोई तर्क।

गुणवत्ता सुनिश्चित करने की प्रक्रिया

गुणवत्ता सुनिश्चित करने की प्रक्रिया का सवाल निजी साझेदारों के चुनाव से ही आरंभ हो जाता है। नीति दस्तावेज बार-बार पारदर्शी चुनाव की बात करता है। यह पारदर्शिता 'पहले-आओ, पहले-पाओ' की नीति और 'बोली लगाने' की प्रक्रिया से सुनिश्चित करने का प्रस्ताव है।

गुणवत्ता का दूसरा और ज्यादा महत्त्वपूर्ण सवाल स्कूलों का ठीक से संचालन और बच्चों का उपलब्धि स्तर है। दस्तावेज कहता है कि ''संचालन के न्यूनतम मानदंड राजस्थान माध्यमिक शिक्षा परिषद् निर्धारित करेगी और संचालन की जांच हर तीन महीने में एक समिति करेगी''। इस समिति में जिला शिक्षा अधिकारी, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के प्राचार्य (या उनका प्रतिनिधि), जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा नामित एक निजी स्कूल के प्राचार्य और उसी तरह नामित एक सरकारी स्कूल के प्राचार्य होंगे।

इसमें पहली बात तो यह है कि यहां बच्चों के सीखने के कोई मापदंड संचालन के न्यूनतम मानदंडों में होंगे या नहीं, यह साफ नहीं है। यह बात उठाना इसलिए जरूरी है कि निजीकरण का औचित्य ही बच्चों के सीखने में परिणामों के आधार पर बनाया गया है। पर सरकार के साथ सहृदयता में मान लेते हैं कि सीखने पर बल होगा और उसके भी मानदंड तय किए जाएंगे। अब समस्या यह आएगी कि यदि यह भी मान लें कि जिला शिक्षाधिकारी महीने में 2 दिन इस काम में लगाएगा और एक दिन में दो स्कूलों का निरीक्षण कर पाएगा, तो भी जिले में ज्यादा से ज्यादा 48 निजी स्कूल हो सकेंगे। क्या सरकार इतने ही चाहती है या ज्यादा? यदि ज्यादा हुए तो उनके निरीक्षण की केवल खानापूर्ति ही हो पाएगी।

दूसरी समस्या यह है कि जो सरकार अपने स्कूलों के समुचित संचालन की व्यवस्था पिछले 65 सालों में नहीं कर पाई वह अब निजी स्कूलों के समुचित संचालन को कैसे सुनिश्चित करेगी? अपने स्कूलों में उनके पास पूरा नियंत्रण होता है और लोग अपने विभाग के होते हैं। निजी स्कूलों में सभी लोग   शिक्षकों समेत   निजी साझेदार द्वारा नियुक्त होंगे। साथ ही, सब जानते हैं कि जिला शिक्षाधिकारी और प्राचार्य, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान राजनैतिक दबाव के चलते सीधे अपने मातहतों तक से तो काम नहीं करवा सकते, ये लोग राजनैतिक समर्थन वाले निजी साझेदारों से मानदंडों का पालन कैसे करवाएंगे? यदि त्रैमासिक जांच को ठीक से चलने की व्यवस्था सरकार कर सकती है तो अपने स्कूलों की व्यवस्था में और क्या चाहिए? इन्हें ठीक क्यों नहीं करती? इस समस्या का समाधान यदि सरकार कर ले तो निजीकरण की जरूरत ही न रहे।

तीसरी बात, पारदर्शी चयन क्या संभव है? अभी तक सरकार पारदर्शी अध्यापक नियुक्ति और उनका स्थानांतरण तो कर नहीं पाती है तो फिर राजनैतिक दबाव वाले निजी साझेदारों का सही चुनाव कैसे करेगी? क्या 'बोली लगाना' शिक्षा में उपयुक्त तरीका है? बोली लगाने में शराब के ठेके की बू आती है और उसमें जो भ्रष्टाचार रहा है उससे हम सभी परिचित हैं। यदि बोली में कोई लॉटरी आदि का तरीका निकाल भी लें तो क्या यह मान्यता है कि हर कोई अच्छा स्कूल चला सकता है? यह तो केवल वही मान सकता है जो शिक्षा के बारे में कुछ भी नहीं जानता। ठीक इसी मान्यता के आधार पर अध्यापक शिक्षा का निजीकरण किया गया था कि निजी संस्थान बेहतर काम करेंगे। आज हम जानते हैं कि अध्यापक शिक्षा लगभग 90 प्रतिशत निजी हाथों में है, इसकी गुणवत्ता गर्त में जा चुकी है, उसे ठीक करना सर्वोच्च न्यायालय तक के बस का नहीं है और वह शिक्षा में भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा अड्डा बन गया है। क्योंकि वह राजनीतिज्ञों और उनके गुर्गों की कमाई का साधन है। हम ठीक इसी तरह के भ्रष्टाचार का एक और उससे भी बड़ा अड्डा बनाने जा रहे हैं जो राजनीतिज्ञों और बड़े अफसरों की मोटी कमाई का साधन बनेगा।

शिक्षकों का शोषण और शैक्षिक ज्ञान का ह्रास

इस योजना के तहत निजी साझेदार शिक्षकों और गैर-शैक्षिक कार्मिकों की नियुक्ति करेगा, सरकार उनकी शैक्षणिक और पेशेवर (professional) योग्यताएं तय करेगी। यही स्थिति निजी स्कूलों में अब भी है और दो बातें जग-जाहिर हैं। एक, अधिकतर सस्ते निजी स्कूल अप्रशिक्षित अध्यापकों के दम पर चल रहे हैं। केवल हाजिरी रजिस्टर में प्रशिक्षित लोगों के नाम होते हैं। दूसरी बात, कोई बिरला स्कूल ही अध्यापकों को उचित वेतन देता है। निजी स्कूलों का अध्यापक शायद आज सबसे अधिक शोषित कर्मचारी है। अध्यापन का पेशा लगभग पूरी तरह नाम मात्र का रह गया है और ज्ञान-विहीन हो चुका है।

पहले तो इस पेशे में वही व्यक्ति आता है जो और कुछ नहीं कर पाता या फिर भविष्य में सुरक्षा के लिए प्रशिक्षण लेता है। फिर उसे ऐसे प्रशिक्षण संस्थान मिलते हैं जहां शिक्षा संबंधी कुछ भी सीखने की गुंजाइश नहीं होती। फिर यह शिक्षा के ज्ञान से विहीन व्यक्ति किसी स्कूल में जाता है जहां इसका शोषण होता है। यह सारी प्रक्रिया शैक्षिक ज्ञान के विकास को पूरी तरह अवरुद्ध कर चुकी है। स्कूलों का इस योजना के तहत निजीकरण इस कोढ़ में खाज साबित होगा।

शिक्षा और मुनाफा

अच्छी शिक्षा और मुनाफा एक साथ नहीं चल सकते या फिर, अच्छी शिक्षा केवल धनिकों को मिल पाती है। यदि गुणवत्ता को मानवीय और लोकतांत्रिक मूल्यों से जोड़कर देखा जाए तो वह भी संदिग्ध हो जाती है। इसमें कोई शक की गुंजाइश नहीं है कि आज भारत के 90 प्रतिशत से अधिक निजी स्कूल और विश्वविद्यालय मुनाफाखोरी के साधन हैं। और यह शिक्षा में मुनाफा गैर-कानूनी होने के बावजूद है। राजस्थान सरकार की इस योजना में भी अधिकतर निजी साझेदार मुनाफे के लिए ही आएंगे।

मेरी जानकारी के मुताबिक 2014-15 में सरकार प्रति विद्यार्थी 14,141 रुपये प्रति वर्ष दिया है। यदि हम एक ऐसे स्कूल की कल्पना करें जिसमें 150 बच्चे प्राथमिक और 100 बच्चे उच्च प्राथमिक स्तर पर हैं तो कुल शुल्क जो सरकार से मिलेगा वह 35,35,250 रुपए सालाना बनता है। इस तरह के स्कूल के लिए 5 अध्यापक प्राथमिक स्तर और 3 उच्च प्राथमिक स्तर पर, 3 अंश कालिक अध्यापक और एक प्रधानाध्यापक चाहिए। आज सरकारी अध्यापक का वेतन (दो वर्ष के परिवीक्षा काल के बाद) 30,057 रुपये प्रति माह बनता है। यदि हम सभी अध्यापकों, प्रधानाध्यापक सहित, एक समान वेतन मान लें और तीन अंश कालिक अध्यापकों का वेतन एक अध्यापक के बराबर मानें तो वेतन का सालाना खर्चा 36,06,840 रुपये आएगा। अर्थात् निजी साझेदार को केवल अध्यापकों के वेतन में 71,590 रुपये का सालाना घाटा होगा। इसमें स्कूल के अन्य खर्चे शामिल नहीं हैं। ऐसी स्थिति में कोई निजी साझेदार क्यों आएगा?

बहुत साफ है, वह स्कूल को शिक्षा का अधिकार अधिनियम के मुताबिक नहीं चलाएगा या चुपचाप छात्रों से अन्य तरीकों से पैसे एंठेगा। दोनों तरीकों में एक तो अध्यापकों का शोषण होगा, दूसरे गुणवत्ता मारी जाएगी और तीसरी उसे अपने खातों में बेईमानी करनी पड़ेगी। यही सब तरीके आज निजी स्कूलों में चल रहे हैं।

दूसरा, निजी स्कूल केवल अधिक नंबर लाने की शिक्षा देते हैं। उसमें बच्चों का अन्य क्षेत्रों में विकास कोई मायने नहीं रखता। ऐसे वातावरण में स्कूल अध्यापकों, बच्चों और अभिभावकों में एक बेईमानी का उदाहरण पेश करेगा। हम आज इस बात को अनदेखा कर रहे हैं कि भारत में स्कूल सबसे बड़ा प्रशिक्षण केंद्र है जहां बच्चे बेईमानी करना सीखते हैं और भ्रष्टाचार को सफल जीवन का एक आम पहलू स्वीकार करना सीखते हैं। यह योजना इस अभ्यास के और बहुत सारे केंद्र तैयार करेगी।

पैसे बनाने का एक और तरीका जमीन का उपयोग होगा। सरकार कहती है कि जमीन चिह्नित करना राजस्थान माध्यमिक शिक्षा परिषद् का काम होगा। यह साफ नहीं है कि यह जमीन मुफ्त मिलेगी या निजी साझेदार को खरीदनी होगी। पर क्योंकि सरकार भवन आदि के लिए धन नहीं देगी और स्कूल बंद होने पर सारी बुनियादी सुविधाएं स्वयं ले लेगी, यह अनुमान लगाना उचित होगा की जमीन सरकार मुफ्त में देगी। जमीन का उपयोग केवल ''शैक्षिक उद्देश्यों'' के लिए किया जा सकेगा। अर्थात् स्कूल चलाने के साथ निजी ट्यूशन केंद्र या निजी महाविद्यालय या कोई प्रशिक्षण केंद्र चलाया जा सकेगा। साथ ही अन्य विद्यार्थी फीस के आधार पर भी लिए जा सकेंगे। यह मुनाफे का असली साधन होगा। अर्थात्, एक न्यूनतम स्तर पर धन सरकार से उपलब्ध होगा और आगे कमाने के लिए खुला आसमान है।

निजी हाथों से छुड़ाना मुश्किल

दुनिया भर का अनुभव बताता है कि शिक्षा और स्वास्थ्य एक बार निजी हाथों में देने के बाद न तो सरकारी मानदंड चलते हैं और न ही उसे छुड़ाया जा सकता है। क्योंकि बहुत ताकतवर लोगों के हित उसके साथ जुड़ जाते हैं। उनके पास धन और सत्ता दोनों होते हैं। इसलिए वे नया नियम बनवाने और धन के बल पर नियमों को बिना माने काम निकालने की काबिलियत रखते हैं। राजस्थान भी शिक्षा को एक बार निजी हाथों में देने के बाद छुड़ा नहीं पाएगा। अध्यापक शिक्षा इसका हमारे अपने देश में बहुत अच्छा उदाहरण है।

एकमात्र रास्ता समान स्कूल आन्दोलन

बहुत सारे शिक्षाविद् कहते रहे हैं कि भारतीय स्कूली शिक्षा को सुधारने का एकमात्र रास्ता समान स्कूल प्रणाली (Common School System) ही है। इनमें प्रमुख प्रोफेसर अनिल सदगोपाल हैं। यही सुझाव कोठारी आयोग की रिपोर्ट और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में भी दिया गया है। इस रास्ते को शिक्षा में काम करने वाले लोग भी विभिन्न कारणों से बहुत समर्थन नहीं देते रहे हैं। यह बड़ी गलती रही है। सारे संसार में कोई भी ऐसी शिक्षा व्यवस्था नहीं है जो निजी हाथों में रहकर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सभी बच्चों तक पहुंचा पाई हो। हम भी यह नहीं कर पाएंगे। जितना सार्वजनिक शिक्षा को कमजोर करेंगे उतना ही गरीबों के लिए शिक्षा अनुपलब्ध होती जाएगी और सारी शिक्षा लोकतांत्रिक नागरिकों के लिए अनुपयुक्त होती जाएगी। सरकार राजस्थान को एक फिसलन भरे ढलान पर धकेल रही है जहां से रास्ता केवल गर्त में और सामाजिक गैर-बराबरी की तरफ जाता है। जो लोग इस भयावह स्थिति को समझते हैं और उससे चिंतित हैं उन्हें समान स्कूल प्रणाली के लिए जोरदार जनांदोलन की संभावनाएं तलाशनी चाहिएं। ◆

लेखक परिचयः दिगन्तर, जयपुर में शैक्षिक सलाहकार हैं और अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बैंगलोर में स्कूल ऑफ एज्युकेशन के निदेशक हैं।